आदिकालीन हिन्दी–साहित्य की काव्य–रुढ़ियाँ एवं काव्य–रुप

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तावित

शोध-प्रारूप

संकाय-मानविकी

विषय-हिन्दी

पैट– 2021 एवं 22

शोध निर्देशक

डॉ० आनन्द प्रकाश गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

अनुसंधाता

गौरव कुमार
एम०ए० हिन्दी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
यू०जी०सी० नेट उत्तीर्ण
पैट क्रमांक- E2209060

• भूमिका–

आदि कहने से भाषा और संवेदना की आदिम अवस्था का बोध होता है। वैसे तो भाषाविदों की मान्यता के अनुसार हिन्दी भाषा का आरम्भ 7वीं सदी से माना जाता रहा है, परन्तु मुख्यरूप से हिन्दी भाषा का विकास दसवीं सदी से शुरू होता है। 1000ई० से 1400ई० के मध्य जो साहित्य हिन्दी प्रदेशों में उपलब्ध होता है, वही हमारे आदिकालीन साहित्य के आधार ग्रन्थ हैं। इन आधार–ग्रन्थों के अवलोकन से यह स्वत: सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण आरम्भिक हिन्दी साहित्य की विवादास्पद स्थिति बहुत कुछ उसकी भाषिक–संरचना कथानक रूढ़ियाँ और काव्य–रूपों में प्रयोग को लेकर है। अपभ्रंश काल तक हम एक परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा की चर्चा करते है, परन्तु उसके बाद ही जिस तरह की भाषिक विविधता संरचनात्मक काव्य–रूपों और कथानक–रूढ़ियों के दर्शन होते हैं उसका कारण जानना काफी श्रमसाध्य है। प्राय: परवर्ती अपभ्रंश में ही इसके बीज तत्त्वों की बात कही जाती है, फिर भी भाषिक स्तरों की विविधता इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है। विविधता के अतिरिक्त जो बात हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह है भाषा का विस्तार और विस्तार की गहरी परम्पराएँ। इन गहरी परम्पराओं का सीधा सम्बन्ध है– साहित्य सृजन से। नि:संदेह उस काल के साहित्य में कथानक रूढ़ियों और काव्य–रूपों के नव्य–दर्शन होते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० नामवर सिंह की मान्यता है कि परिनिष्ठित अपभ्रंश में आधुनिक देशी बोलियों के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के रचना काल (1142) में ही मिलने लगता है। उनकी देशी नाममाला में भी ऐसे अनेक देशी शब्दों का संग्रह है जो प्राकृत में नहीं बल्कि अपभ्रंश साहित्य में भी प्रयुक्त है। ऐसे शब्दों का प्रयोग बोलचाल में होता रहा होगा, यह बात सहज ही सोची जा सकती है। इसके अतिरिक्त 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने स्वयं ही शिष्ट अपभ्रंश से भिन्न 'ग्राम्य अपभ्रंश' का अस्तित्व स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि ग्राम्य अपभ्रंश

सामान्य लोक जीवन में व्यवहृत होनेवाली परिनिष्ठित अपभ्रंश का ही कोई न कोई रूप था जिसमें संभवत: स्थानीय बोलियों का मिश्रण हो गया था। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि देशी बोलियाँ पहले से ही अस्तित्व में थी, तभी उसका मिश्रण सम्भव हुआ होगा।

जहाँ तक इस कालखंड में साहित्य सृजन का प्रश्न है तो इस सम्बन्ध में साहित्य का समेकित रूप नहीं मिलता। टुकड़ो में और खंड रूप ही हस युग का साहित्य प्राप्त होते हैं। इस कालखंड के साहित्य का मूल धरातल लोक जीवन में प्रचलित कथानक रूढ़ियाँ हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी परम्परा और लोक–जीवन में प्रचलित रही है। इस कालखंड के साहित्य की दूसरी मूल विशेषता भी– काव्य–रूपों का प्रयोग। इस आरम्भिक काल में कवियों ने अलग–अलग काव्य–रूपों का प्रयोग किया है जो साहित्य के कलात्मक शौकर्य के लिए प्रयुक्त होता था। इस युग के काव्य–रूपों को भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत कर सकते हैं–

i) नृत्य पर आधारित काव्य–रूप

ii) अभिनेय एवं संगीत पर आधारित काव्य–रूप

iii) छन्दों पर आधारित काव्य–रूप

iv) ऋतुओं पर आधारित काव्य–रूप

v) संस्कारों पर आधारित काव्य–रूप

vi) वर्णों एवं संख्या पर आधारित काव्य–रूप

vii) गूढ़ार्थक काव्य–रूप

उपर्युक्त सभी वर्गों के काव्य–रूपों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

रास–रास, रासो, रासक, रासह, रासउ, रासलय इत्यादि शब्द मूलत: संस्कृत के रास धातु से निष्पन्न है जिनके अनेक अर्थ हैं– चिल्लाना, सामान्य ध्वनि, भाषण, एक प्रकार का

नृत्य विशेष गोलघेरा, क्रीड़ा, मंगल एवं भगवान कृष्ण द्वारा वृन्दावन में गोपियों के साथ किया गया एक नृत्य–विशेष।

इसके अतिरिक्त अन्य काव्य–रूपों में फागु, चर्चरी, दोहा–चोउपई, बेलि, बारहमासा और षट्ऋतु धवल, पावड़ा, रेलुआ संधि, संत और कुलक प्रमुख हैं।

इस तरह इस काल खंड की कथानक रूढ़ियों और काव्य–रूपों के स्वरूप को दृष्टि–पथ में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आदिकालीन काव्य–रूप और कथानक रूढ़ियाँ इस कालखंड के वे साहित्यिक उपादान है जिससे हिन्दी साहित्य पल्लवित और पुष्पित होकर सृजन के मार्ग में पर अग्रसर हुई है। कबीर, तुलसी सूर, बिहारी आदि उस समृद्ध साहित्य के प्रणेता संभवत: कभी न बन पाते यदि अपने पूर्वजों की यह काव्य–परम्परा विकसित रूप में उन्हें न मिली होती। आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य में भी इस काल रूपों और कथानक रूढियों का प्रयोग हुआ है। ऐसी स्थिति में, प्रस्तावित शोध प्रारूप आदिकालीन हिन्दी साहित्य की काव्य रूढ़ियाँ और कालरूप की विकसनशील परम्परा की कड़ियों को जोड़कर सम्यक् निरूपण अन्दसंधान के क्षेत्र में नये द्वार का उद्घाटन करता है। ऐसे विषय पर अनुसंधान से आदिकालीन कथानक रूढ़ियाँ और काव्यरूपों का साहित्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण संभव हो सकेगा।

• शोध विषय की आवश्यकता:

हिन्दी साहित्य का आदिकाल हिन्दी साहित्य की विकास प्रक्रिया की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कालखंड हैं। प्राय: 1000 ई० से 1400 ई० तक का समय इसकी काल सीमा मानी जाती है। 14 वीं शताब्दी के ठीक बाद हिन्दी साहित्य का वह युग प्रारम्भ होता है जिसे हम भक्तिकाल के नाम से जानते हैं। समर्थ आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यह काल उस समय की दो प्रमुख धाराओं को समेट कर चलता है। ये धाराएँ हैं– निर्गुण धारा तथा सगुण धारा।

इन धाराओं की भी दो–दो शाखाएँ फूट निकलीं। निर्गुण धारा से जो शाखाएँ फूटीं वे ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी (सूफी) शाखाओं के नाम से जानी जाती है। सगुण धारा से जो शाखाएँ प्रस्फुटित हुईं वे रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा के नाम से सुविख्यात हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को 'स्वर्ण-युग' के नाम से अभिहित किया है। बाद के आलोचकों और मूल्यांकनकर्ताओं ने भी इसे सहर्ष स्वीकार किया। देशी अथवा विदेशी विद्वानों से कोई खास आपत्ति सामने नहीं आयी। इसका कारण है– "कबीर, जायसी, सूर, तथा तुलसी जैसे समर्थ, महान और लोकधर्मी कवियों का प्रादुर्भाव। इस युग के इन कवियों के साहित्य की उदात्तता, पावनता, गम्भीरता, कलात्मकता और भाव–प्रवणता की प्रशंसा केवल उच्च कोटि के विद्वानों और आलोचकों ने हीं नहीं की, अपितु जनता ने भी इन्हें सिर–माथे लगाया। संक्षेप में यदि हम इस काल की विशेषताओं को बताना चाहें तो यों कह सकते है कि हमारे जीवन में जो कुछ सत्य है, शिव है, सुन्दर है, उसकी अन्यतम अभिव्यक्ति भक्ति–साहित्य में हुई है। वह केवल वार्द्धक्य का साहित्य नहीं है। वह प्रौढ़ता का, पूर्णता का, जीवन की महान उपलब्धियों का साहित्य है। वह ज्ञान का साहित्य है, भक्ति, श्रद्धा, स्नेह और प्रेम का साहित्य है, हार्दिक सहानुभूति, संवेदना और करुणा का साहित्य है, वह मनोरम कल्पनाओं की साकारता का साहित्य है, वह श्रेष्ठ, श्रेयस्कर साहित्य है।"[1]

इस काल के ठीक बाद का काल रीतिकाल अथवा श्रृंगारकाल के नाम से पुकारा जाता है। इस काल के साहित्य का भी अपना महत्त्व है। इसके मूल्यांकन के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है, परन्तु इस काल का साहित्य यह स्पष्ट घोषणा करता है कि जीवन का लौकिक पक्ष कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। यह भी क्या बात है कि हमेशा पारलौकिकता या आध्यात्मिकता की ही दुनिया में रमा जाय। रीतिकाल में केशव, बिहारी, घनानंद, बोधा, आलम जैसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, और रीतिमुक्त कवियों ने अपने साहित्य में इसी इहलौकिक जीवन की दिव्यतम झाँकियों को प्रस्तुत किया है।

किंतु बिडंबना यह है कि इन सभी साहित्यिक प्रवृतियों को समेट कर चलने वाला आदिकाल प्रायः उपेक्षित रहा है। डॉ० ग्रियर्सन की मान्यता है कि ब्रजभाषा के प्रौढ़तम और उत्कृष्टतम रुप में पहुँचने के पहले का काल बिल्कुल अंधकारमय था।[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी ब्रजभाषा का अध्ययन करते समय आदिकाल की स्थिति के बारे में स्पष्ट लिखा है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल से हमें कोई ऐसी विश्वस्त सामग्री नहीं मिलती जो ब्रजभाषा के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डाल सके।[3] इन्हीं सूत्रों को पकड़कर डॉ० पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ ने इस काल को 'अंधकार–युग' के नाम से सम्बोधित किया।[4] यहाँ तक कि डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी को नवोपलब्ध सामग्रियों का स्वागत इस अंधकार युग को उद्घाटित करने के लिए ही करना पड़ा।[5]

इस तरह स्पष्ट है कि आदिकाल की जितनी साहित्यिक सामग्रियाँ उपलब्ध हैं वह प्रायः बिखरी हुई है, इसके आधार पर कोई निश्चित धारणा बनाना कठिन था। इस कालखण्ड की साहित्यिक सामग्रियों को एक सूत्र में बाँधने का काम वाराणसी की नागरी प्रचारिणी सभा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पुरातत्व मंदिर जयपुर, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज बड़ौदा, भारतीय विद्या मंदिर, मुम्बई द्वारा होता रहा है। इन्हीं संस्थाओं के भगीरथ प्रयास के फलस्वरूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' जैसे ग्रंथ में वैज्ञानिक मूल्यों का अन्वेषण करने में सफल हो सके। उनकी विवेचना के अंतर्गत केवल पुरानी हिन्दी ही नहीं बल्कि अपभ्रंश ग्रंथों का भी समावेश कर लिया गया है क्योंकि उनके अनुसार अपभ्रंश सामग्रियाँ हमेशा से भाषा काव्य के अतर्गत मानी जाती रही हैं। शुक्ल जी के हिंदी साहित्य के इतिहास को देखने से यह बात प्राय: स्पष्ट हो जाती है कि खुमान रासो, परमाल रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि विवादग्रस्त कही जाने वाली रचनाओं के अलावा सिद्धों, नाथों तथा जैनियों के कुछ ऐसे ग्रंथ विद्यमान थे, जिन्हें शुक्ल जी ने देखा था। परन्तु इनके अध्ययन और विवेचन के पश्चात्

जो स्थापनाएँ उन्होंने स्थापित की वह साहित्य के इतिहास के क्रमिक विकास और वैज्ञानिक विवेचन के लिए बहुत अधिक उत्साहवर्धक सिद्ध नहीं हुई। सामग्रियों के अभाव के कारण किसी काल को अंधकार युग कहना तो ठीक है, परन्तु एक खास मनोवृत्ति के तहत नवीन उपलब्धियों को नकारना उचित नहीं जान पड़ता। इस सम्बन्ध में डॉ० नामवर सिंह की मान्यता है कि "रूप विधान सम्बन्धी इन रूढ़ियों के अतिरिक्त काव्य की कुछ ऐसी रूढ़ियाँ हैं जो मूलत: किसी न किसी भाव या विचार का प्रतीक थीं, किन्तु धीरे–धीरे रूढ़ होकर अपनी मौलिक भाव सम्पदा की और संकेत करने की शक्ति खो बैठी और परवर्ती काल के काव्यों में रूप विधान का ही एक अंग बन गयी। नख–शिख वर्णन संध्या–उषा वर्णन तथा किसी उद्यान के फूलों का वर्णन आदि कुछ ऐसी ही काव्य रूढ़ियाँ हैं।

इसी तरह इस कालखण्ड में हिन्दी साहित्य के विविध काव्य रूप विकसित हुए। कथानक रुढ़ियों का विकास हुआ एवं अनेक प्रकार के छंदो में बांधकर इस कालखण्ड के कवियों ने पर्याप्त मात्रा में काव्य रचनाएँ की हैं। इन काव्य रुढ़ियों, काव्यरुपों एवं इस काल खण्ड की कविताओं में प्रयुक्त छंदों पर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है। ऐसे अनुसंधान से निश्चित ही इस कालखंड की रचनाओं की श्रेष्ठता और कलात्मक उत्कर्ष की अभिवृद्धि हो सकती है।

• प्रस्तावित शोध विषय का महत्त्व:

आदिकाल की नवोपलब्ध सामग्रियों से आदिकाल के अनेक काव्यरूपों, कथानक रूढ़ियों एवं विविध प्रकार के छंदो का उद्घाटन हुआ है। इन सामग्रियों के आधार पर निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि काव्यरूपों, कथानाक रुढ़ियों एवं छंदों की दृष्टि से यह बड़ा ही समृद्ध काल रहा है।

विभिन्न काव्य–प्रवृत्तियों के साथ अनेक काव्यरूपों के दर्शन हमें यहीं होते हैं। इनकी संख्या विशाल है। इन काव्यरूपों की परम्परा जहाँ पूर्ववर्ती साहित्य से जुड़ी हुई है वहीं ये परवर्ती साहित्य को प्रभावित करने में भी पूर्ण समर्थ हुए हैं। कहना नहीं है कि काव्यरूपों की दृष्टि से इस काल का महत्त्व असंदिग्ध है।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य के आदिकालीन ग्रंथो में काव्य रूप एवं कथानक रूढ़ियों का बहुल प्रयोग मिलता है। कवियों की कृतियों में रूप विधान सम्बन्धी कुछ ऐसी रूढ़ियाँ प्रयोग में आने लगती हैं, जिनकी परम्परा अधिक दिनों तक चलती रहती है। और तब तक चलती रहती है, जब तक उनकी ऊब से उनके विरुद्ध कोई विद्रोह सामने खड़ा नहीं हो जाता। इन काव्य–रूढ़ियों के रूप में कवियों को एक बनी–बनाई लीक या रास्ता मिल जाता है और उसी पद्धति पर वे आगे बढ़ते चले जाते हैं। काव्यों में उनका समावेश प्राय: आवश्यक माना जाने लगता है। प्रबन्ध काव्य में अपने अभीष्ट देवता का मंगलाचरण, आत्म–परिचय, दुर्जन–निन्दा, सज्जन–प्रशंसा, ग्रंथ रचना का उद्देश्य, विषय प्रतिपादन, अन्त में आशीर्वादात्मक वचन तथा मुक्तक काव्यों में “कवि का नाम” रखा जाना आदि कुछ ऐसी ही काव्य रूढ़ियाँ हैं, जिन्हें कवि अपनी रचना प्रारम्भ करने से पहले ही उनके प्रयोग को ध्यान में रखता है। संस्कृत के पिछले खेमे के कवि– बाणभट्ट, माघ, श्रीहर्ष आदि ने कमोवेश इनका प्रयोग किया है। इनके पूर्ववर्ती वाल्मीकि और कालिदास में यह रूढ़ियाँ प्रायः नहीं मिलती। परन्तु अपभ्रंश में इनके प्रयोग की मात्रा अधिक बढ़ गई और यह परम्परा आदिकालीन और मध्यकालीन कवियों में और अधिक अग्रसारित दिखाई पड़ती है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अब्दुल रहमान अपने काव्य ग्रंथ “संदेश रासक” को प्रारम्भ करते ही ‘आदि करतार’ की वन्दना करते हैं, अपना व्यक्तिगत परिचय देते हैं, अपने पूर्ववर्ती कवियों का स्मरण करते हैं, तथा आत्म निवेदन करने के बाद ग्रंथ समापन का उद्देश्य प्रतिपादित करते हैं और तब कहीं मूल कथा प्रारम्भ होती है।

संदेश रासक का प्रथम प्रक्रम तो इस काव्य–रुढ़ि के पालन में ही समाप्त हो जाता है। 'पृथ्वीराजरासो' में भी यही पद्धति दिखाई पड़ती है। आदि देव ब्रह्मा को प्रणाम और सरस्वती की वन्दना के पश्चात् "तिनै की उचिष्टी कवी चन्द भख्खी" कहकर अपने पूर्ववर्ती कवियों का स्मरण और आत्म निवेदन दोनों का निर्वाह कर लेते हैं। काव्य–रूढ़ियों के पालन में 'संदेश रासक' और 'पृथ्वीराज रासो' प्राय: समान दिखाई पड़ते हैं। 'हरिचन्द पुराण,' 'प्रद्युम्न चरित', चान्दायन, कीर्तिलता आदि में कमोवेश यही रूढ़ि दिखाई पड़ती है। जैन कवियों ने प्राय: तीर्थङ्कर की ही वन्दना की है।

इस तरह स्पष्ट है कि काव्य रूढ़ियाँ, काव्य रूप एवं छंद प्रयोग आदिकालीन हिन्दी साहित्य का समृद्ध रिक्थ है। ऐसे विषय पर वैज्ञानिक अनुसंधान का एक अपना नैसर्गिक महत्त्व है और साथ ही साथ समसामयिक परिस्थितियों की मांग भी है। साथ ही आदिकालीन काव्य रूढ़ियाँ आधुनिक हिन्दी कविता के लिए भी मूल्यपरक प्रदेय सिद्ध हुआ है। ऋतु वर्णन एवं प्राकृतिक उपादानों के अवयव से सम्बंधित काव्य रूढ़ियाँ छायावादी कविता से लेकर प्रयोगवादी कविता, नयी कविता एवं समकालीन कविता के लिए भी काफी उत्प्रेरक के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रही है। नये उपमान, नये प्रतीक प्रकृति में मानवीकरण जैसे काव्यात्मक उपादान का आधार आदिकालीन कथानक रूढ़ियाँ ही है। ऐसी स्थिति में आदिकालीन कथानक रूढ़ियाँ, काव्य रूप एवं छन्द विधान का वर्त्तमान समय में भी सर्वाधिक महत्त्व है। प्रस्तुत अनुसंधान के द्वारा हिन्दी कविता के क्षेत्र में नये मूल्यों और सिद्धांतों की स्थापना संभव है।

• पूर्वकृत शोध कार्य:

प्रस्तावित शोध विषय 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य की काव्य–रूढ़ियाँ एवं काव्यरूप' पर स्वतंत्र रूप से अनुसंधान संपन्न नहीं हुआ है। फिर भी इस कालखंड के साहित्य पर जो अनुसंधान सम्पन्न हुए हैं उसकी सूची निम्नवत है–

1) अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, 1927 ई०।

2) अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, 1965 ई०

3) अपभ्रंश साहित्य, डॉ० हरिवंश कोछड़, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली

4) आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, डॉ० हरिशंकर शर्मा, 'हरीश' मंगल प्रकाशन, जयपुर

5) चन्दबरदायी और उनका काव्य, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, 1952 ई०

6) डिंगल में वीर रस, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, संवत 2008 ई०

7) ढोला मारू रा दूहा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2011 ई०

8) दक्खिनी हिन्दी का पद्य और गद्य, (सं०) श्री राम शर्मा।

9) नाथ संप्रदाय– डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1950 ई०

10) पुरानी हिन्दी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2005 ई०

• शोध के आधार ग्रंथ:

प्रस्तावित शोध प्रारूप 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य की काव्य रूढ़ियाँ और काव्य रूप' विषय पर अनुसंधान के लिए प्रस्तावित आधार ग्रंथ निम्नवत होंगे–

1) वर्ण रत्नाकर, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता 1940 ई०

2) विद्यापति की पदावली, (सं०) श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, लहेरियासराय।

3) वीरकाव्य, डॉ० उदय नारायण तिवारी, संवत् 2005 ई०

4) संदेश रासक, अब्दुल रहमान्, सं० (डॉ०) हजारी प्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई 1960 ई०

5) हिन्दी काव्यधारा– राहुल सांकृत्यायन, 1944 ई०

6) गोरखबानी, डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

7) नाथ–सिद्धों की बानियाँ– सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी नागरी प्रचारणी सभा काशी, सवंत् 2014

8) प्राकृत पैंगलम्

9) कीर्तिलता

10) हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

• प्रस्तावित शोध विषय की परिकल्पना:

‘आदिकालीन हिन्दी साहित्य की काव्यरूढ़ियाँ एवं काव्यरूप’ शोध विषय के सम्बन्ध में मेरी परिकल्पना है कि आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सामग्री अत्यंत बिखरी हुई है। उन साहित्यिक समाग्रियों को एकत्रित कर उनके काव्यरूप व कथानक रूढ़ियों का वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा उत्कृष्ट साहित्यिक मूल्यों की स्थापना के साथ–साथ सम्पूर्ण आदिकालीन साहित्य के वैज्ञानिक आयामों के नये अध्याय का सृजन संभव हो सकेगा। आदिकालीन साहित्य की अनेक कृतियाँ भक्तिकालीन साहित्य के उपजीव्य के रूप में मौजूद है। भक्तिकालीन हिन्दी काव्य के अपने उत्कृष्ट रूप में स्थापित होने का मूल कारण आदिकालीन हिन्दी साहित्य का समृद्ध

काव्यरूप, कथानक रूढ़ियाँ एवं छंद विधान है। एतदर्थ प्रस्तावित विषय के अनुसंधान से आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक मूल्यों के आधार पर नवीन स्थापना संभव है।

- **शोध की प्रविधि:**

प्रस्तावित शोध–प्रारूप की मूल विधि विवरणात्मक होगी। आगमन विधि के द्वारा तथ्यों का संकलन और निगमन विधियों के द्वारा तथ्यों का विश्लेषण, प्रमाणीकरण एवं शोध के वैज्ञानिक मूल्यों की स्थापना संभव है। इतना ही नहीं प्रस्तावित शोध विषय में सर्वेक्षण विधि एवं प्रश्नावली विधि का भी उपयोग संभव है।

- **शोध अध्यायों का विभाजन:**

प्रस्तावित शोध–प्रारूप निम्न अध्यायों में विभाजित होगा–

अध्याय– एक

1) अपभ्रंश काल का भाषिक स्वरूप और आदिकालीन हिन्दी साहित्य का विकास

2) आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सामग्री

अध्याय– दो

1) आदिकालीन हिन्दी काव्य के विविध आयाम

2) आदिकाल की प्रमुख रचनाएँ एवं साहित्यिक महत्त्व

अध्याय– तीन

आदिकालीन हिन्दी साहित्य के विविध काव्य रुप–

काव्यरुप क्या है, रूप और शैली, काव्यरूपों का उद्भव, विकास और परिवर्तन, आदिकाल के महत्त्वपूर्ण काव्यरूप– रासक अथवा रासो, फागु या फाग, चर्चरी, चरित काव्य, कथा–कहानी, चऊपई काव्य, दोहा काव्य, दोहा–चौपाई कड़वक–बद्धकाव्य, प्रश्नोत्तरी या गोष्ठी, रमैनी, विवाहलो एवं मंगल काव्य, पावड़ा काव्य, गेयपद, मुक्तक काव्य– स्तोत्र मुक्तक, राजप्रशस्ति मुक्तक, कक्क मातृका काव्य, लता तथा पताका काव्य षड्ऋतु और बारहमासा।

अध्याय– चार

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की कथानक रुढ़ियाँ

काव्य रुढ़ियाँ, काल्पनिक रुढ़ियाँ, कथानक रूढ़ियाँ, कथानक रुढ़ियाँ और उनका प्रयोग, श्रोता–वक्ता के रुप में पक्षी–युगल की संयोजना, दैवी शक्ति, ऋषि मुनि का वरदान अथवा हविष्यान्न, प्रेम–प्रसंग सम्बन्धी कथानक रुढ़ियाँ, रोमांटिक देश सिंघल द्वीप संबधी कथानक रुढ़ियाँ, स्त्री प्रेम का तिरस्कार एवं उसके दुष्परिणाम, अप्सरा का अवतार, प्रेमघटक एवं प्रेममूलक कथानक रुढ़ियाँ, नायक का औदार्य एवं शौर्य, दोहद कामना, बारहमासा अथवा षड्ऋतु वर्णन के माध्यम से विरह निवेदन।

अध्याय– पाँच

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त छंदों का अनुशीलनः–

साहित्य और छंद, छंद और उसकी उत्पत्ति, काव्य छंद लय और संगीत, आदिकाल के प्रमुख छंद–दोहा, सोरठा, चउपई (चौपई), चौपाई, अरिल्ला (अडिल्ला), पद्धड़िया, मरहट्ठा, कामिणी मोहन, झुलणा छंद, गाथा (गाहा), द्विपदी (दुवई), फुल्लय, चुडिल्लय, डोमिलय, त्रिभंगी, पद्मावती तथा दंडकल, रासक (आभणक), चन्द्रायण तथा प्लवंगम, चर्चरी विअष्षरी (वियक्खरी), वाली छंद (मणबहला), निशिपाल (खंजा) नंदिणी अथवा तोटक और भमरावली, मधुभार, गीतिका, रोला, उल्लाला, छप्पय (कव्व अथवा वत्थु) तथा कुण्डलिया, रड्डा, खडहडय, सवैया, धनाक्षरी, गीतमालती, माधुर्य, वीर छंद, हरगीतिका, करषा, करवा, हनूफाल, रसावल, सरस्वती धवल, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलंबित, वसन्ततिलका, शार्दुलविक्रीड़ित, रथोद्धता, मालिनी, तोटक (त्रोटक), नाराच, अर्द्धनाराच, मोतीदाम, विद्युन्माल।

अध्याय– छह

उपसंहार

1) शोध के निष्कर्ष और मौलिक मान्यताएँ

2) प्रस्तुत अनुसंधान का महत्त्व

परिशिष्ट–

संदर्भ ग्रन्थों की सूची–

प्रस्तावित संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1) असली पृथ्वीराज रासो, सम्पादक पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, मोतिलाल मेनारिया, बनारसीदास, बनारस 1952 ई०

2) अर्द्धकथानक, सम्पादक नाथूराम 'प्रेमी', हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई सन् 1957

3) उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण, भारतीय विद्याभवन, बम्बई संवत् 2010 ई०

4) कबीर, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942 ई०

5) काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, रसिकलाल पारिख, रामचन्द्र अथवले, सन् 1938

6) काव्य–मीमांसा, राजशेखर, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज

7) कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा (सं०) डॉ० शिवप्रसाद सिंह, 1955 ई०

8) कीर्तिपताका (सं०) डॉ० उमेश मिश्र, अखिल भारतीय मैथिली साहित्य समिति तीर मुक्ती इलाहाबाद 1960 ई०

9) कुमारपाल चरित, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्युट पूना 1936 ई०

10) गुरू ग्रंथ दर्शन, डॉ० जयराम मिश्र

11) गोरखबानी (सं०) डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, संवत् 1999।

12) जैन साहित्य और इतिहास, पं० नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, 1956 ई०

13) दक्खिनी हिन्दी, डॉ० बाबूराम सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 1952 ई०

14) धर्म और समाज, डॉ० राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

15) नाथ–सिद्धों की बानियाँ, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2014।

16) पाहुड़ दोहा, मुनिराम सिंह, (सं०) डॉ० हीरालाल जैन, कारंजा, संवत् 1901 ई०

17) पुरातन प्रबंध–संग्रह (सं०) मुनि जिनविजय, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, 1936 ई०।

18) पृथ्वीराज रासो भाग 1, (सं०) कविराज मोहन सिंह, साहित्य संस्थान उदयपुर।

19) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, श्री अगरचंद भँवरलाल नाहटा, सं० 1994।

20) इतिहास और आलोचना, डॉ० नामवर सिंह 1957 ई०

21) पृथ्वीराज रासो की भाषा, नामवर सिंह, 1956 ई०

22) पृथ्वीराज रासउ, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन

23) प्राकृत और उसका साहित्य, डॉ० हरदेब बाहरी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण

24) प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, डॉ० राम सिंह तोमर, हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय 1964 ई०

25) प्रबंध चिन्तामणि, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी (अनु०)

26) रासो साहित्य विमर्श, डॉ० माता प्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1962 ई०

27) शिवसिंह सरोज, श्री शिव सिंह सेंगर, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।

28) सिद्ध साहित्य, डॉ० धर्मवीर भारती, 1955 ई०।

29) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, नामवर सिंह, 1954 ई०।

30) हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, तृतीय संस्करण, 1910 ई०

31) हिन्दी वीर काव्य, डॉ० टीकम सिंह तोमर, 1945 ई०

32) हिन्दी साहित्य, डॉ० श्याम सुन्दर दास, 1953 ई०

33) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1952 ई०

34) हिन्दुई साहित्य का इतिहास, गार्सा द तासी, अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 1952 ई०

35) बीसलदेव रासो, (सं०) डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा अगरचंद नाहटा, 1953 ई०

36) रास और रासान्वयी काव्य, डॉ० दशरथ ओझा, डॉ० दशरथ शर्मा।

37) पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ, श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव, 1955 ई०

38) छंद प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु 1939 ई०, बिलासपुर प्रेस से,

37) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना– रामविलाश शर्मा 1955 ई०

40) साहित्येतिहास– सुमन राजे 2003 ई०

शोध निर्देशक

डॉ० आनन्द प्रकाश गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

अनुसंधाता

गौरव कुमार
एम०ए० हिन्दी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
यू०जी०सी० नेट उत्तीर्ण
पैट क्रमांक- E2209060